International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 15-10-2024, Accepted: 14-11-2024, Published: 03-12-2024
Volume 10, Issue 4, 2024, Page No. 44-47

अस्तित्व की लड़ाईः आदिवासी कविता

कृष्ण प्रीति ए. आर
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, श्रीनारायणगुरु ऑपन यूनिवर्सिटी, कोल्लम, केरल, भारत

सारांश
आदिवासी समुदायों का संघर्ष केवल उनकी पहचान और अस्तित्व के लिए नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण के लिए भी है, जो पृथ्वी के समग्र अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। यह संघर्ष उन सामाजिक–आर्थिक दबावों को उजागर करता है, जो आदिवासियों को शोषण, कर्ज और बंधुआ मजदूरी की ओर धकेलते हैं, साथ ही पारंपरिक आजीविका के नुकसान और विस्थापन के कारण आत्महत्या की दर को बढ़ाते हैं। आदिवासी महिलाओं को त्रिगुणी भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिससे वे कई प्रकार के शोषण की शिकार होती हैं। बाजारीकरण पर आधारित समाज इस संघर्ष को नजरअंदाज करता है और आदिवासी प्रतिरोध को तुच्छ मानता है, जबकि यह पर्यावरणीय स्थिरता और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए अनिवार्य है। इस संदर्भ में आदिवासी कविता एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरती है, जो उनके संघर्ष और आशा को व्यक्त करती है, और इस विमर्श को वैश्विक जागरूकता और एकजुटता की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

मूल शब्दः आदिवासी समुदाय, संघर्ष, सामाजिक–आर्थिक

आदिवासी समुदायों का संघर्ष न केवल अपनी पहचान और अस्तित्व बचाने के लिए, बल्कि धरती के पारिस्थितिक तंत्र को बनाए रखने के लिए भी है। उनकी लड़ाई पूरी मानवता के भविष्य से जुड़ी हुई है। आदिवासी, सदियों से प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्ण सहअस्तित्व का जीवन जीते आए हैं। वे पारंपरिक ज्ञान और प्रथाओं के माध्यम से जैव विविधता को संरक्षित करते हैं, जो पूरे ग्रह के लिए अमूल्य है। आदिवासी आंदोलन केवल विरोध का नहीं बल्कि एक सकारात्मक दृष्टिकोण का प्रतीक है। वे एक ऐसे भविष्य की कल्पना करते हैं जहां मानव और प्रकृति सह–अस्तित्व में रहें। "आदिवासी अस्तित्व में रहेगा तो जंगल सुरक्षित रहेगा, जंगल सुरक्षित रहेगा तो प्रकृति बचेगी, प्रकृति बचेगी तो पृथ्वी और पृथ्वी सही सलामत है तो उसका आसमान भी बचेगा। इसलिए संसार का प्रत्येक आदिम समुदाय धरती को मां तथा आकाश को पिता मानकर चलता है, हवा व पानी को क्रमशः बहन तथा भाई और अग्नी को मित्र चाहे वह उत्तरी अमेरिका का रेड इंडियन हो दक्षिणी अमेरिका का बुश नीग्रो हो, अफ्रीका का जुलू हो या फिर अंडमान का जारवा हो।"[1] लाभ और विकास के नाम पर, आदिवासियों के प्रतिरोध को अक्सर दबा दिया जाता है। सत्ताधारी वर्ग अपनी आर्थिक हितों को सर्वोपरि मानते हुए, आदिवासियों की भूमि और संसाधनों पर कब्जा करना चाहता है। पूंजीवादी व्यवस्था में, मुनाफा ही सर्वोपरि है। इस व्यवस्था में, आदिवासी समुदायों को केवल एक संसाधन के रूप में देखा जाता है, न कि एक समाज के रूप में। सत्ताधारी वर्ग अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए, आदिवासियों को विद्रोह करने से रोकने के लिए हर संभव प्रयास करता है। वे न केवल बल का प्रयोग करते हैं, बल्कि कानून और नीतियों का भी दुरुपयोग करते हैं।

आदिवासी समुदाय, जो ऐतिहासिक रूप से स्वतंत्र रहे हैं, अक्सर राज्य द्वारा दमन के शिकार होते हैं। उन्हें नक्सलवादी या माओवादी करार देकर उनके विरोध प्रदर्शनों को कुचला जाता है। राज्य के तंत्र द्वारा उन्हें बिना किसी जवाबदेही के हिरासत में लिया जाता है और यहां तक कि मार डाला जाता है, जिससे उनके मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन होता है। कानून का दुरुपयोग करते हुए, आदिवासियों को अपने अधिकारों के लिए शांतिपूर्ण आंदोलन करने से रोका जाता है। उन्हें अक्सर कानून–व्यवस्था की समस्या बताकर दबाया जाता है, जबकि वास्तविकता में वे अपने जन्मसिद्ध अधिकारों की मांग कर रहे होते हैं। "लूटमार एवं विस्थापन के खिलाफ संघर्ष करते हैं तो यानी जन जन आंदोलन चलाने वाले लोगों को पुलिस झूठे मुकदमों में फंसा कर जेल में डाल देती है या माओवादियों से मिले होने के आरोप में कई बार एनकाउंटर में मार देती है।"[2] आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान होती है, जो उनकी भूमि और प्राकृतिक संसाधनों से गहराई से जुड़ी होती है। आदिवासी संस्कृति, प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्ण सहअस्तित्व का एक आदर्श उदाहरण है। उनकी भूमि उनके लिए केवल आर्थिक संसाधन नहीं, बल्कि उनकी आध्यात्मिकता और सामाजिक संरचना का आधार भी है। राज्य अक्सर इन संसाधनों का दोहन करने के लिए आदिवासियों के अधिकारों का हनन करता है, जिससे उनकी सांस्कृतिक पहचान खतरे में पड़ जाती है। सत्ताधारी वर्ग अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए, आदिवासियों को विस्थापित करके और उनकी भूमि पर कब्जा करके अपनी आर्थिक हितों को पूरा करता है।

"वे डर को स्थाई बना देना चाहते हैं
ताकि हवा हवा न रहे
और चीटियां ज़मीन के आर– पार न चली जायें
वे हर ताकत को वर्दी में और
हर वर्दी को मरे हुए
मस्तिष्क में बदल देना चाहते हैं"[3]

सत्ता में बैठे लोग अक्सर आदिवासियों को अपने राजनीतिक लाभ के लिए इस्तेमाल करते हैं। वे आदिवासियों के मुद्दों का सिर्फ चुनावी मुद्दा बना देते हैं, और सत्ता में आने के बाद उनके हितों को नजरअंदाज करते हैं। आदिवासी समुदायों के प्राकृतिक संसाधनों और भूमि पर कब्जा करने के लिए, सत्ताधारी वर्ग अक्सर उनका शोषण करता है। राजनेता, उद्योगपति और भूस्वामी मिलकर आदिवासियों को उनके ही जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित करते हैं। आदिवासियों की सांस्कृतिक पहचान और जीवनशैली को नष्ट करने के लिए, सत्ताधारी वर्ग उनके बीच फूट डालने की नीति अपनाता है। राजनीतिक दल आदिवासियों को अपने मतदाता के रूप में देखते हैं, न कि एक स्वतंत्र समुदाय के रूप में। ग्रेस कुजूर की कविता इसी व्यवस्था के खिलाफ एक

विद्रोह है, जो आदिवासियों को केवल राजनीतिक लाभ के साधन के रूप में देखती है।

"लेकिन तुम्हें क्या मालूम
चार पैरों की कुर्सी पर
बैठने केलिए
तुम किए जाते हो इस्तेमाल
सीढी की तरह"[4]

अपनी पारंपरिक खेती और जीवनशैली से विस्थापित होकर, आदिवासी समुदाय मजदूरी पर निर्भर हो गए हैं। यह निर्भरता उन्हें कर्ज के बोझ तले दबा देती है, जिससे वे बंधुआ मजदूरी के चक्र में फंस जाते हैं। आदिवासी समुदायों की भूमि पर अतिक्रमण और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, उन्हें अपनी आजीविका के लिए दूसरों पर निर्भर बना देता है। वे बड़े किसानों, उद्योगपतियों और ठेकेदारों के लिए सस्ते मजदूर बन जाते हैं। अपनी भूमि और पारंपरिक ज्ञान से दूर होने के कारण, आदिवासी अपनी सांस्कृतिक पहचान खोते जा रहे हैं। वे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक गरीबी और शोषण के चक्र में फंसे रहते हैं। यह सामाजिक–आर्थिक दबाव आदिवासियों को पूरी तरह से स्वावलंबन से परावलंबन की ओर धकेल रहा है।

आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर रहने वाले आदिवासी, अक्सर बेहतर जीवन की तलाश में धर्म परिवर्तन करते हैं। ईसाई मिशनरी संस्थाएं, खाद्य, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सुविधाएँ प्रदान करके आदिवासियों को आकर्षित करती हैं। "ईसाई आदिवासी उन्नत कृषि संसाधनों का प्रयोग करते हैं फल स्वरुप आदिवासियों इस समुदाय की आय में भी वृद्धि हो गई है।"[5] आदिवासी समुदायों की भूमि और संसाधनों पर अतिक्रमण के कारण, वे अपनी पारंपरिक आजीविका से वंचित हो जाते हैं। इस आर्थिक संकट से बचने के लिए, वे धार्मिक संगठनों द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता पर निर्भर हो जाते हैं। धर्मांतरण केवल आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक सुरक्षा और समर्थन के लिए भी होता है। कई आदिवासी समुदायों में, धार्मिक संस्थाएं एक समुदाय के रूप में कार्य करती हैं, जो सामाजिक समर्थन और पहचान प्रदान करती हैं। इस प्रकार, धर्म परिवर्तन आदिवासियों के लिए एक आश्रय स्थल बन जाता है, खासकर उन परिस्थितियों में जहां वे अपनी पारंपरिक जीवन शैली को बनाए रखने में असमर्थ होते हैं।

आदिवासी समुदायों में आत्महत्या की दर लगातार बढ़ रही है। भूमि हनन, गरीबी, शराब, बलात्कार और पुनर्वास की कमी जैसे मुद्दे आदिवासियों को आत्महत्या करने के लिए मजबूर कर रहे हैं। आदिवासी समुदायों के सामने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संकट है। वे अपनी जमीन, रीति–रिवाज और पहचान खो रहे हैं, जिससे मानसिक तनाव और निराशा बढ़ रही है। आदिवासी कविता में इस संकट को एक विद्रोह के रूप में देखा जाता है। जसिन्दा केरकेट्टा जैसी कवियों ने आदिवासियों की आत्महत्या को एक बलिदान के रूप में प्रस्तुत किया है, जो एक असमान और अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ विरोध है। यह आत्महत्या, एक मौन विरोध है, जो राज्य और समाज को आदिवासियों की पीड़ा को समझने के लिए मजबूर करता है।

जसिन्दा केरकेट्टा की कविताएँ ऐसी प्रवृत्तियों का विरोध करती हैं। आदिवासियों की मृत्यु का कारण आत्महत्या न मानकर, अन्य कारणों को स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि आदिवासियों की आत्महत्या राष्ट्रीय हित को क्षति पहुँचा सकती है। अतः, व्यवस्था सदैव आदिवासियों पर नज़र रखती है। उन्हें आत्महत्या का अधिकार नहीं है; भूख से मरना स्वीकार्य हो सकता है, पर आत्महत्या नहीं।

"पर तुम आत्महत्या की कोशिश करे
तो वे तिलमिलाएंगे
सब कुछ करने की अनुमति है तुम्हें
बस नहीं कर सकते तुम
उनके षड्यंत्रों से हारकर
अपनी हत्या का प्रयास।" [6]

आदिवासी नारी एक बहुआयामी संघर्ष का सामना करती है। वह न केवल एक नारी है, बल्कि एक आदिवासी और दलित भी है। यह त्रिगुण पहचान उसे समाज में बहिष्कृत और शोषित बनाती है। औद्योगीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में, आदिवासी नारी सस्ते श्रम के रूप में शोषित हो रही है। कॉर्पोरेट कंपनियां उसे बिना किसी अधिकार के काम पर लगाती हैं। इसके अतिरिक्त, दीकू समाज, सरकारी कर्मचारी, पुलिस और राजनेता आदि द्वारा छेड़छाड़ और यौन शोषण की घटनाएं आम हैं। नाबालिग आदिवासी लड़कियां भी इस शोषण से अछूती नहीं रहती हैं। लाखों आदिवासी लड़कियों का अपहरण कर उन्हें शहरों में नौकरानी या वेश्यावृत्ति के धंधे में धकेल दिया जाता है। निर्मला पुतुल की कविता 'चुडका सोरेन से' इस अमानवीय व्यवहार की कड़े शब्दों में निंदा करती है।

"ऐसे इंसानों की गंध नहीं पहचानता
इसलिए सूघता ता है दूर से ही
सड़क पर या फिर अकेले
यह चलती लड़कियों की गंध
और टूट पड़ता है एक साथ
जैसे कुत्तों की झुंड को
दिख गया हो
कोई मांस का टुकड़ा" [7]

कई बार, गरीबी और बेबसी के चलते आदिवासी माता–पिता मजबूरी में अपनी बेटियों को बेच देते हैं। सौदागर, ठेकेदार, जमींदार और साहूकार इस दुर्दशा का फायदा उठाते हुए इन बेबस परिवारों को छलकर उनकी बेटियों को अगवा कर ले जाते हैं। लाखों आदिवासी लड़कियां आज अपने घरों से दूर, अज्ञात स्थानों पर कैद हैं और अपने परिवार को वापस लौटने के लिए तरस रही हैं। कविता इस बेबसी और पीड़ा को मार्मिक ढंग से व्यक्त करती है।

"कटी–फटी देह की दरारों से झाँकती
स्त्री की भीगी आखें सवाल पूछ रही
इंसानियत का धर्म जो भूल गए हैं
उनकी घर वापसी कौन कराएगा ?" [8]

ज़ाहिर है, मुनाफे पर आधारित वर्ग आदिवासी संपदा को निगलने का अवसर ढूंढ़ते रहते हैं। अर्थात, बड़ी–बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियों की नजर आदिवासियों के जल, मिट्टी, ज़मीन और खेतों पर है। इस प्रकार, ये वर्ग आदिवासी समुदाय के ध्वंस के इच्छुक और उसके कारण बने हुए हैं। जेसिंदा केरकेट्टा अपनी कविता ' गिद्ध दृष्टि' में इन कॉर्पोरेट कंपनियों को आकाश में मंडराते 'गिद्ध' के रूप में चित्रित करती हैं, जो आदिवासी समाज की संपत्ति को लूटने का अवसर तलाश रहे हैं।

"आकाश में गिद्ध मंडराने लगे
खेत अधजले बीजों को सीने में छुपाए
चीत्कार उठे–
नोच खाने की जिनकी प्रवृत्ति हो
ऐसी – गिद्ध दृष्टि
लाशें ही तलाश सकती हैं!" [9]

मुनाफे के उद्देश्य से आदिवासी समाज को उनकी मातृभूमि से उखाड़ने पर उन्हें गहरा आक्रोश है। जिस मिट्टी का संरक्षण वे सदियों से करते आए हैं, अब उस पर से उन्हें उखाड़ा जाना उनके लिए असहनीय हो गया है। व्यावसायिक लाभ के लिए बनाए जा रहे स्टेडियम, बाँध जैसी परियोजनाओं ने उनकी संस्कृति और प्रकृति दोनों को नुकसान पहुँचाया है। अपनी मातृभूमि से अलग किए जाने पर वे स्वयं को परायापन का अहसास करते हैं। सभ्य समाज का ढोंग रचने वाले ये आधुनिक यंत्र केवल प्रकृति को ही नहीं, बल्कि आदिवासी समाज को भी चबा रहे हैं। मशीनों के नोक से उनकी मिट्टी, पेड़–पौधे, जल और जंगल का अस्तित्व खतरे में है। अपनी पहचान के नष्ट होने का दुःख वही समझ सकता है, जो इससे गुजर रहा हो। इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए जेसिंता केरकेट्टा ने अपनी मातृभूमि से मशीनों द्वारा उखाड़ने के अमानवीय व्यवहार का दर्दनाक चित्रण किया है।

"मैं कुरुआ में सो रहा था
अचानक जमीन हिलने लगा लेगी
देखा
जमीन उखाड़ती मशीन के पजों पर
अपने खेत को
उस टुकड़े के साथ
मैं भी लटका था मशीन पर
तब महसूस हुआ मुझे
अपनी ज़मीन सहित उखड जाने का दर्द" [10]

आदिवासी समाज की भूमि को कॉर्पोरेट्स और बेनामी लोगों द्वारा बेचने के खिलाफ भी कविता अपनी आवाज उठाती है। कंपनियों के प्लांटेशन से जंगलों और मिट्टी की नैसर्गिकता नष्ट हो रही है, और कृत्रिमता का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। गांव अब शहर में बदलते जा रहे हैं, जिससे आदिवासी समाज चिंतित और परेशान है। उन्हें अपने पूर्वजों द्वारा संरक्षित हर चीज की अहमियत का गहरा एहसास है। बाजारीकरण के कारण जो चीजें नष्ट हो रही हैं, उनका महत्व आदिवासी समाज अच्छी तरह समझता है।
वह हर उस चीज से संवेदनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है, जो उसकी धरती पर उगती है। व्यावसायीकरण और बाजारीकरण के तहत उसकी हर चीज को अब माल बना कर बेचा जा रहा है। यह प्रवृत्तियां घातक परिणाम लेकर आएंगी, क्योंकि प्रकृति में हर चीज का अपना महत्व और अस्तित्व है, और ये सब एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। आदिवासी संस्कृति का निर्माण इन सभी तत्वों के साथ हुआ है, जो उनके पूर्वजों द्वारा संरक्षित किए गए थे।इसलिए, उनके द्वारा किया गया आचरण कोई अंधविश्वास नहीं है, बल्कि यह प्रकृति और स्वत्व के बचाव के लिए पिरोया गया शाश्वत सत्य है। कविता बांस को तीर और धनुष बनने की ओर इशारा करती है, ताकि उसे बाजारीकरण के दबाव में समाहित होने से रोका जा सके और उसके अस्तित्व की रक्षा की जा सके।

"मेरे पूर्वजों की देह /टुकड़ों में काटी जा रही थी
मैंने देखा उन्होंने करोड़ों में / बिकते हुए
खरीदारों की भीड़/नीच शहर बन गई थी
लगा मेरे ही शरीर का हिस्सा/कतरे में बिक रहा हो
पीढीयों का भविष्य /पहाड़ों की तलहटी में
बेच रहा था बांस /तब छूटते ही मशीन के पन्नों से
मैंने उठा लिया बांस बासार नहीं जाएगे /जंगल के अंदर वे
बनेंगे हर हाथ का तीर– धनुष /तब पहली बार समझ में आया
पूर्वजों के रक्त से सिंचित / पहाड़ों पर उगे
असंख्य बाँसों का रहस्य" [11]

बाज़ारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से सम्पूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के विलुप्त होने का खतरा बढ़ता जा रहा है। यह स्थिति मानवता को विनाश की ओर ले जा रही है। जंगलों में बाज़ारीकरण, उपभोक्तावाद और औद्योगिकीकरण की आग लगी हुई है, जिसे बुझाना अत्यंत आवश्यक है। यदि इस आग को नियंत्रित नहीं किया गया, तो सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश हो सकता है। मानव अपनी क्षणिक भलाई के लिए प्रकृति का अंधाधुंध शोषण कर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप उसे स्वयं के विनाश का सामना करना पड़ेगा। यह सच्चाई मानव अक्सर भूल जाता है, जबकि वह प्रकृति के शोषण में अग्रणी बना हुआ है। यदि यह प्रक्रिया जारी रही, तो इसका भयानक परिणाम समस्त जीव–जंतुओं के लिए अत्यंत घातक साबित होगा।
इसलिए, इस आग को बुझाने का समय अब आ चुका है, लेकिन कई लोगों के मन में यह विश्वास गहरा हो गया है कि लगी हुई आग को बुझाना असंभव है। आदिवासियों का आत्मविश्वास भी अब कमजोर हो गया है। वे सोचते हैं कि उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली तत्वों के साथ संघर्ष करके वे कभी जीत नहीं सकते। ऐसे में कवि और कविता इस वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष करने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। हरिराम मीणा अपनी पुस्तक 'आदिवासी लोक की यात्राएँ' में इस संघर्ष को इस प्रकार व्यक्त करते हैंरू "एक समय जंगल में भीषण आग लगी। अपनी रक्षा के लिए सारे जंगली जानवर इधर–उधर दौड़ने लगे। इस भयानक हादसे के बीच एक नन्हीं चिड़ीया अनोखा कार्य कर रही थी। जहां आग लग रही थी, वह चिड़ीया वहां से दूर जाती और किसी सरोवर से अपनी चोंच में जल की एक बूंद लेकर आती, फिर उसे दहकती हुई आग की लपटों पर ऊंचाई से डाल देती। फिर वह वापस जाती, चोंच में एक और बूंद भरकर लाती और आग पर डाल देती। यह काम वह लगातार तब से कर रही थी, जब से आग लगी थी। इस प्रक्रिया को देखकर एक कौआ चुपचाप उसकी ओर देख रहा था, और विस्मित होकर उसने चिड़ीया से पूछा, श्रानी बिटिया, तुम यह क्या कर रही हो? इस भीषण अग्निकांड में तुम्हारी नन्हीं चोंच में भरकर लाई गईं ये बूंदें तो आग की लपटों में जलकर नष्ट हो रही हैं। इनका क्या उपयोग? तुम्हारा यह अथक परिश्रम व्यर्थ है। 'चिड़ीया ने गंभीर होकर अपने पतले स्वर में उत्तर दिया, ''कौवा चाचा, तुम शायद ठीक कह रहे हो, लेकिन जब कभी जंगल में लगी इस आग का इतिहास लिखा जाएगा, तो मेरा नाम आग लगाने वालों की सूची में नहीं होगा। मेरा नाम डरकर भागने वालों की सूची में भी नहीं होगा। मेरा नाम तटस्थ रहने वालों की सूची में भी नहीं होगा। लेकिन मेरा नाम जरूर लिखा जाएगा आग बुझाने वालों की सूची में, चाहे वह सबसे आखिर में ही क्यों न हो। [12] "यह कहानी हमें यह सिखाती है कि परिस्थितियां चाहे जैसी भी हों, छोटी सी कोशिश भी बड़ा बदलाव ला सकती है। हमें अपनी भूमिका निभानी चाहिए, भले ही वह संघर्ष किसी बड़े वर्चस्व के खिलाफ हो।

निष्कर्ष

आदिवासी समुदायों का संघर्ष सिर्फ एक समुदाय विशेष का संघर्ष नहीं है, बल्कि यह पूरे मानव समाज और धरती के भविष्य से जुड़ा हुआ है। उनकी जीवनशैली और प्रकृति के साथ गहरा नाता हमारे लिए एक मिसाल है। हमें उनकी संस्कृति, ज्ञान और संसाधनों का सम्मान करते हुए उनके अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। आदिवासियों के साथ मिलकर काम करके ही हम एक ऐसे भविष्य की कल्पना कर सकते हैं जहां सभी को न्याय और समानता मिले और प्रकृति का संतुलन बना रहे।इसलिए, हमें व्यक्तिगत स्तर पर और समाज के स्तर पर भी आदिवासी मुद्दों के प्रति जागरूक होना होगा और उनके समर्थन में आवाज उठानी होगी। सरकारों को भी आदिवासियों के हितों को ध्यान में रखते

हुए नीतियां बनानी चाहिए। केवल तभी हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर पाएंगे जो सतत विकास के मार्ग पर आगे बढ़ सके।

संदर्भ सूची

1. आदिवासी लोक की यात्राएँ, हरिराम मीणा, भारतीय ज्ञानपीठ, 2019 पृ. 11
2. आदिवासी प्रतिरोध, केदार प्रसाद मीण, अनुज्ञा बुक्स, 2017 पृ. 104
3. पत्थलगडी, अनूज लूगून, वाणी प्रकाशन, 2021 पृ. 16
4. एक और जनी शिकार, ग्रेस कुजूर अनुज्ञा बुक्स, 2021 पृ. 74
5. आदिवासी प्रतिरोध, केदार प्रसाद मीणा, अनुज्ञा बुक्स, 2017 पृ. 95
6. जडों की ज़मीन, जेसिन्ता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ, 2018 पृ. 62
7. जडों की ज़मीन, जेसिन्ता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ 2018 पृ.58
8. जडों की ज़मीन, जेसिन्ता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ 2018 पृ.104
9. अंगोर, केरकेट्टा जेसिन्ता, जेसिन्ता केरकेट्टा, अनुज्ञा बुक्स पृ. 24
10. अंगोर, जेसिन्ता केरकेट्टा, अनुज्ञा बुक्स, 2018 पृ .78
11. अंगोर, जेसिन्ता केरकेट्टा, अनुज्ञा बुक्स, 2018 पृ. 78
12. आदिवासी लोक की यात्राएँ, हरिराम मीणा, भारतीय ज्ञानपीठ, 2019 पृ.10. 11